



Van Sangyan



Tropical Forest Research Institute

(Indian Council of Forestry Research and Education)

PO RFRC, Mandla Road, Jabalpur – 482021

Visit us at: <http://tfri.icfre.gov.in> (or) <http://tfri.icfre.org>

Write to us at: vansangyan_tfri@icfre.org

Editorial Board

- Dr. U. Prakasham, IFS, Patron
- P. Subramanyam, IFS, Vice Patron
- Dr. N. Roychoudhary, Chief Editor
- Dr. Naseer Mohammad, Editor & Coordinator
- Dr. Rajesh Kumar Mishra, Asst. Editor

From the Editor's desk



Silk is the only environment friendly fibre made of proteins, the secretations of sericigenous insects, known as silk worm. This is one of the most important non timber forest produce and livelihood options of forest dwellers.

This issue of Van Sangyan contains an article on sericulture and silk production - an introduction.

There are also useful articles on plantation forestry and their quantification, tree battling with extinction, bhajpatra, Ailanthus webworm, rodents problems in forest nurseries, forests, environment and religion and, herbal insecticides.

I hope that you would find all information in this issue relevant and valuable.

Readers of Van Sangyan are welcome to write to us about their views and queries on various issues in the field of forestry.

Looking forward to meet you all through forthcoming issues.

We wish all the readers and contributors a very happy and prosperous NEW YEAR, 2015.

Dr. N. Roychoudhary

Chief Editor

Contents	Page
कीड़ों से रोजगार: पर्यावरण मित्र रेशम कीट पालन एवं उत्पादन डॉ. राजेश कुमार मिश्रा, डॉ. नसीर मोहम्मद एवं डॉ. एन. रॉयचौधरी	1
Goods and services provided by plantation forestry and their quantification Milkuri Chiranjeeva Reddy and Mhaiskar Priya Rajendra	8
<i>Semecarpus kathalekanensis</i> – A tree battling with extinction Milkuri Chiranjeeva Reddy and Mhaiskar Priya Rajendra	9
Bhojpatra- Indian Paper Birch Swaran Lata	10
<i>Ailanthus</i> webworm, <i>Atteva fabriciella</i> Swederus (Lepidoptera: Yponomeutidae) - a major threat to <i>Ailanthus excelsa</i> Dr. Sanjay Paunikar	13
वन रोपवाटिका मधे कुरतडणा-या प्राण्यांचा (रोडन्ट्सचा) प्रादुर्भाव व त्याचे व्यवस्थापन डॉ. संजय पौनीकर	15
पौधे प्रकृति व मानव सभ्यता के महान संरक्षक डॉ सीमा भास्कर	17
धर्म, वनस्पति एवं पर्यावरण डॉ. बाला खत्री एवं सीमा भास्कर	20
हर्बल कीटनाशक: किसान मित्र एवं उत्पादकता के साथ स्वास्थ्य का रखवाला ए.जे.के. असैया एवं राजेन्द्र बागड़े	22

कीड़ों से रोजगार: पर्यावरण मित्र रेशम कीट पालन एवं उत्पादन भाग एक: परिचय

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा, डॉ. नसीर मोहम्मद एवं डॉ. एन. रॉयचौधरी

उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

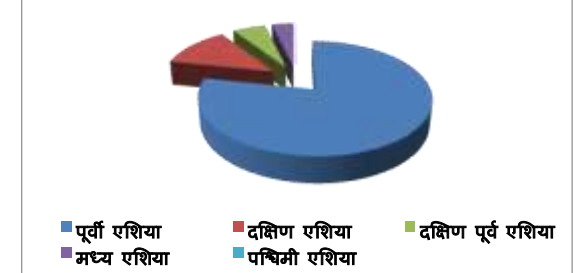
रेशम को प्राचीन काल से ही आदिवासी संस्कृति से जोड़कर देखा जाता है। वनांचलों में रहने वाले आदिवासी प्राकृतिक रूप से उत्पादित कोसे को एकत्र कर अपनी रोजी-रोटी चलाते थे। यद्यपि आज यह उद्योग काफी विकसित हो चुका है तथापि यह आज भी स्पष्ट तौर पर आदिवासी और वन-क्षेत्र पर ही ज्यादा निर्भर है।

रेशम वास्तव में प्राकृतिक रेशा है। इस कपड़े की चमक, दरअसल रेशम रेशे के तिकोने प्रिज्म रूपी बनावट के कारण होती है जिससे सूर्य की किरणें परावर्तित होती हैं। रेशम के उत्पादन अर्थात् खेती को सेरिकल्चर (sericultur) कहा जाता है। रेशम का उत्पादन चीन में ईसा पूर्व 3500 साल में किये जाने का उल्लेख है। चीन में यह 'चिनाम्बरा' (Chinambara) के नाम से प्रसिद्ध है। चिनाम्बरा का अर्थ है- सुनहरे रंग का चीन में निर्मित धागा। हमारे देश में रेशम के व्यापार का उल्लेख हमें सर्वप्रथम मगध राज्य के राजा अजातशत्रु के शासनकाल में मिलता है। इसका भी उल्लेख मिलता है कि ईस्वी 320-480 के दौरान बिहार के भागलपुर क्षेत्र में रेशम का व्यापार अपने चरम पर था। आज चीन के बाद भारत, विश्व का दूसरा सबसे बड़ा रेशम-उत्पादक देश है। इसके बावजूद भी स्थानीय मांग की पूर्ति नहीं हो पाती है तभी तो दूसरे देशों से मंगाना पड़ता है। हमारे यहाँ अधिकतम रेशम मैसूर और उत्तरी बंगलौर (कर्नाटक) में पैदा किया जाता है। इसके बाद भूदानपोचमपल्ली, धरमावरम (आन्ध्रप्रदेश) कांचीपुरम (तमिलनाडू), बनारस मुर्शिदाबाद-मालदा (पश्चिमबंगाल) और आसाम तथा कश्मीर में रेशम का उत्पादन किया जाता है।

रेशम उत्पादन में भारत का दूसरा स्थान है। आजकल रेशम से बने भारतीय परिधान चलन में हैं। भारत में निर्मित रेशमी कपड़ों का निर्यात विदेशों में भी किया जाता है। रेशम उद्योग या सेरीकल्चर में व्यक्ति खुद की जीविका तो चला सकते हैं, बल्कि उद्योग लगाकर दूसरे लोगों को भी रोजगार दे सकते हैं। रेशम उद्योग में तकनीकी ज्ञान के साथ विशेषज्ञता की भी जरूरत होती है। विगत कुछ वर्षों में रेशम उत्पादों का

निर्यात बढ़ने से इसमें रोजगार की संभावनाएं भी बढ़ी हैं। इस क्षेत्र में कच्चे रेशम के निर्माण के लिए रेशम के कीड़ों का उत्पादन और पालन किया जाता है। इसे ही रेशम उत्पादन या सेरीकल्चर कहा जाता है। इन रेशम के कीड़ों से रेशम के धागे और फिर कपड़ों का निर्माण किया जाता है। रेशम उत्पादन एक अत्यन्त गहन श्रम क्षेत्र है, जिसमें कृषि (रेशम उत्पादन) और उद्योगों के क्रियाकलाप शामिल होते हैं। भारत का कच्चा रेशम उत्पादन में विश्व में दूसरा स्थान है। इस स्थान के साथ-साथ इसकी अपार रोजगार क्षमता, जो रेशम पालन और सिल्क को भारतीय कपड़े के नक्शे में अपरिहार्य बनाता है।

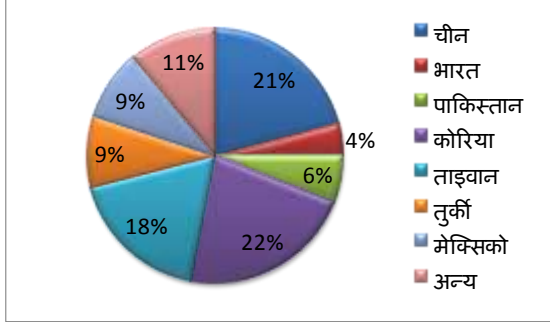
एशिया महाद्वीप में कच्चे रेशम का उत्पादन



भौगोलिक रूप से, एशिया विश्व में रेशम का मुख्य उत्पादक है तथा यह कुल वैश्विक उत्पादन के 95% से अधिक का उत्पादन करता है। इसका मुख्य भाग चीन, भारत, जापान, ब्राजील तथा कोरिया में उत्पादित किया जाता है। भारत को विश्व में दूसरे प्रमुख कच्चे रेशम के उत्पादक का दर्जा दिया गया है। यह विश्व के कुल कच्चे रेशम के उत्पादन में लगभग 18% का योगदान करता है।

उत्पादित रेशम की किस्मों में से, शहतूत रेशम की मात्रा 89.45% है जिसके पश्चात इरी टसर तथा मूगा का क्रमशः 8.04%, 1.89 तथा 0.62%, का योगदान है। लगभग 40-45% रेशम का उत्पादन चरखा से किया जाता है तथा लगभग 40-45% कुटीर बेसिनों से प्राप्त होती है तथा शेष 10% रेशम का स्रोत मल्टी और रीलिंग है। अपनी प्रचुर रोजगार संभावना के साथ यह स्थिति रेशम उद्योग तथा रेशम को भारतीय वस्त्र मानचित्र में अपरिहार्य बना देती है। इसका प्रयोग देश भर के लगभग 53, 814 ग्रामों के किया

जाता है। यह लगभग 6 मिलियन लोगों को रोजगार उपलब्ध कराता है जिनमें से अधिकांश लघु तथा सीमांतीय किसान अथवा अति लघु तथा घरेलू उद्योग हैं जो मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में हैं।



रेशम वस्त्र उद्योग बाजार में विश्व के कुछ प्रमुख देशों का अंश

रेशम तथा रेशम की वस्तुएं बहुत अच्छी विदेशी मुद्रा अर्जक हैं। रेशम उद्योग अपनी निम्न निवेश, उच्च उत्पाद, कम अवधि, आय के वर्धन हेतु प्रचुर अवसरों तथा पूरे वर्ष परिवार रोजगार सृजन के कारण सीमांतीय तथा लघु भूमि धारकों, दोनों के लिए उपयुक्त है। यह मुख्यतः महिलाओं का व्यवसाय है तथा महिलाओं के लिए है क्योंकि महिलाएं कार्यबल के 60% से अधिक का निर्माण करती हैं। तथा 80% रेशम की खपत महिलाएं करती हैं। रेशम-उद्योग में शामिल कार्य जैसे पत्तों की कटाई, सिल्कवॉर्म का पालन, रेशम के धागे की स्पिनिंग अथवा रीलिंग तथा बुनाई का कार्य महिलाएं करती हैं।

यह एक उच्च आय सृजन उद्योग है जिसे देश के आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। इस क्षेत्र में नौकरी और स्वरोजगार दोनों के लिए पर्याप्त अवसर हैं। तकनीकी योग्यता हासिल करने के बाद इस क्षेत्र की कंपनियों में रोजगार मिल सकता है। सेरीकल्चर कुटीर उद्योग के अंतर्गत आता है। सरकार ग्रामीण विकास और कुटीर उद्योग को बढ़ावा देने के लिए कई कार्यक्रम चला रही है। सेरीकल्चर में स्नातक करने के बाद स्वयं का सेरीकल्चर का उद्योग भी स्थापित किया जा सकता है। मास्टर डिग्री हासिल करने के बाद शिक्षण के क्षेत्र में भी करियर बनाया जा सकता है। ग्रामीण युवाओं के साथ शहरी युवा भी इस क्षेत्र की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

रेशम भारत के जीवन में रच बस गया है। हजारों वर्षों से यह भारतीय संस्कृति और परम्परा का अभिन्न अंग बन गया है। कोई भी अनुष्ठान किसी न किसी रेशम के उपयोग के बिना पूरा नहीं होता है। रेशम उत्पादन और सिल्क रेशमी कपड़ा एक मुख्य उप क्षेत्र है जिसमें कपड़ा क्षेत्र आता है। रेशम उत्पादन कृषि आधारित कुटीर उद्योग है। रेशम उत्पादन का आशय

बड़ी मात्रा में रेशम प्राप्त करने के लिए रेशम उत्पादक जीवों का पालन होता है। रेशम उत्पादन कृषि आधारित श्रम गहन उद्योग है। रेशम उत्पादन उद्योग में मुख्यतः रेशम कीट खाद्य पौधों की खेती करना; कच्चा रेशम के उत्पादन के लिए रेशम कीट पालना; रेशम फिलोमेंट निकालने के लिए कोकून का रीलिंग; और अन्य कोकून पश्च प्रसंस्करण जैसे कि, मरोड़ना, डाइ करना, बुनना, प्रिंटिंग और तैयार करना आदि शामिल हैं। रेशम का मूल्य बहुत अधिक है परन्तु इसकी उत्पादन की मात्रा कम है जो विश्व के कुल कपड़ा उत्पादन का केवल 0.2 प्रतिशत है। यह आर्थिक महत्व का मूल्यवर्धित उत्पाद प्रदान करता है। मूंगा रेशम के उत्पादन में भारत का एकाधिकार है। यह कृषि क्षेत्र में एकमात्र नकदी फसल है जो 30 दिनों के भीतर प्रतिफल प्रदान करता है। रेशम उत्पादन महत्वपूर्ण आर्थिक क्रियाकलाप के रूप में उभरा है यह देश के अनेकानेक भागों में लोकप्रिय होता जा रहा है क्योंकि इसकी परिपक्वता अवधि कम होती है, संसाधनों का तुरंत पुनः चक्रण होता है। यह सभी प्रकार के हितग्राहियों के लिए उपयुक्त होता है विशेषतया सीमांत और छोटे जमीन धारकों के लिए चूंकि यह आय बढ़ाने के लिए समृद्ध अवसर प्रदान करता है और साल भर के लिए परिवार के लिए रोजगार का सृजन करता है।

रेशम एक अद्वितीय शान वाला एक प्राकृतिक रूप से उत्पादित पशु रेशा है, को सही अर्थों में कपड़ों की रानी कहा जाता है। इसकी विशेषताएं इसकी अतुल्य विशिष्टताएं जैसे प्राकृतिक चमक, रंजक हेतु अंतर्हित स्वाभाविकता, चटकीले रंग, उच्च शोषणता, कम भार, तथा उत्कृष्ट पहनावा इत्यादि हैं। रेशम के कीड़ों की विभिन्न प्रजातियों से प्राप्त रेशम की पांच प्रमुख किस्में हैं। भारत के पास रेशम की इन सभी किस्मों का उत्पादन करने की अद्वितीय क्षमता है।

रेशम की पांच किस्मों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।



शहतूत रेशम पतंगा

शहतूत रेशम: यह रेशम के कीड़े बाम्बिक्स मोरी एल से प्राप्त होता है जो शहतूत के पौधों पर पोषण करता है। भारत में, प्रमुख शहतूत रेशम उत्पादक राज्य कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु तथा जम्मू और काश्मीर हैं जो मिलकर देश के कुल शहतूत के कच्चे रेशम का 92 % उत्पादन करते हैं।

वन्य रेशम: इसमें निम्न प्रकार के रेशम आते हैं।
टेम्परेट टसर रेशम: यह एंथ्रिया मिलिता नामक रेशम की कीड़े द्वारा बनाया जाता है जो मुख्यतः असम तथा अर्जुन के खाद्य पौधों पर पोषण करते हैं। टसर एक तांबे के रंग की खुरदरी रेशम है जिसका प्रयोग फर्निशिंग्स तथा इंटीरियर के लिए किया जाता है। भारत में, प्रमुख टसर रेशम उत्पादक राज्य झारखंड, छत्तीसगढ़ तथा उड़ीसा, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल तथा आंध्र प्रदेश हैं।



ट्रॉपिकल टसर रेशम पतंगा

ट्रॉपिकल टसर रेशम या ओक टसर रेशम: यह एंथ्रिया प्रोली जे नामक रेशम के कीड़े द्वारा उत्पादित टसर की परिष्कृत किस्म है जो ओक के प्राकृतिक भोज्य पौधों पर पोषण करता है। भारत में इसका उत्पादन मुख्यतः भारत की उप-हिमालयी क्षेत्र में होता है जिसमें मणिपुर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, असम, मेघालय तथा जम्मू और काश्मीर के राज्य शामिल हैं।
मूंगा रेशम: यह रेशम के कीड़े एंथ्रिया असमेन्सिस से प्राप्त एक पीले रंग का रेशम है। ये रेशम के कीड़े सोम तथा सोलू पौधों के सुगंधित पत्तों पर पोषण करते हैं। मूंगा रेशम असम का गौरव है तथा राज्य की परम्परा तथा संस्कृति का प्रतीक हैं।

इरी रेशम (अथवा एंडी या इरेंडी) : यह रेशम के कीड़े फिलोसमिया रिसिनी का उत्पाद है जो मुख्यतः केस्टर के पत्तों पर पोषण करता है। यह रेशम की अन्य किस्मों से भिन्न खुले सिरों वाले कोकूनों से बुना गया मल्टीवोल्टिन रेशम है। भारत में, इस पद्धति का प्रयोग मुख्यतः असम सहित पूर्वोत्तर राज्यों में किया जाता है। यह बिहार, पश्चिम बंगाल तथा ओडिशा में भी पाया जाता है। इरी कलचर मुख्यतः प्रोटीन

समृद्ध



ओक रेशम पतंगा

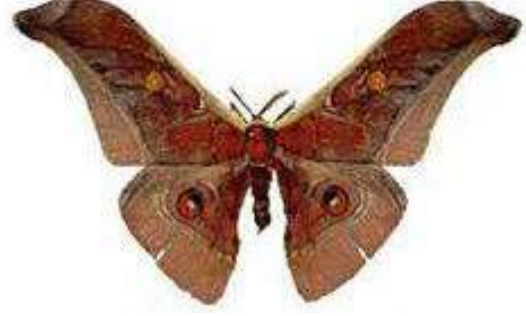
प्यूपा के लिए व्यवहार में लाई जाने वाली एक घरेलू गतिविधि है जो जनजातीय लोगों का प्रिय भोजन है। परिणामतः इरी कोकून खुले मुंह वाले होते हैं तथा इन्हें बुना जाता है। रेशम का प्रयोग स्वदेशी रूप से इन जनजातीय लोगों द्वारा अपने स्वयं के प्रयोग हेतु चादरें (ओढ़नी) तैयार करने के लिए किया जाता है। रेशमी धागा बनाने के लिए सबसे पहले रेशम के कीड़ों के लार्वा को एक खास ट्रे में नियंत्रित तापमान और नमी वाले कमरे में रखा जाता है। उन्हें नियमित रूप से मलबेरी के पत्ते खिलाये जाते हैं। एक खास वक्त पर ये लार्वा कोकून कही जाने वाली परत (यानीखोल) धारण कर लेते हैं। मलबेरी की 1 एकड़ की खेती से एक साल में औसतन 240 किलोग्राम कोकून तैयार होते हैं। चरखे या मशीन का इस्तेमाल कर कोकून से धागा बनाया जाता है और फिर आगे की प्रोसेसिंग के साथ इन्हें कपड़ों में ढाला जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ावा दिया जाए तो देश में रेशम की खेती का धंधा काफी फल फूल सकता है। वैसे तो रेशम पैदा करने वाले कीड़ों की और भी किस्में हैं लेकिन दुनिया में रेशम का करीब 95 फीसदी उत्पादन मलबेरी सिल्क वर्म से होता है। पश्चिम बंगाल के मालदा और मुर्शिदाबाद और बिहार का भागलपुर देश में सिल्क के उत्पादन के लिए मशहूर हैं। देश में सालाना हज़ार करोड़ रूपए से ज्यादा के सिल्क यानी रेशम का उत्पादन होता है। इस कारोबार में करीब 27 लाख लोग लगे हैं जिनमें से आधी से ज्यादा तादाद महिलाओं की है। रेशम के कपड़ों के निर्यात का कारोबार भी बहुत बड़ा है। बेहद महंगे माने जाने वाले रेशम का उत्पादन देश में आज भी ज़्यादातर पारम्परिक तरीके से ही होता है। कच्चा रेशम बनाने के लिए रेशम के कीटों का पालन सेरीकलचर या रेशम कीट पालन कहलाता है। रेशम उत्पादन का आशय बड़ी मात्रा में रेशम प्राप्त करने के लिए रेशम उत्पादक जीवों का पालन करना होता है। इसने अब एक उद्योग का रूप ले लिया है। यह कृषि पर आधारित एक कुटीर उद्योग है। इसे बहुत कम

कीमत पर ग्रामीण क्षेत्र में ही लगाया जा सकता है। कृषि कार्यों और अन्य घरेलू कार्यों के साथ इसे



इरी रेशम पतंगा

अपनाया जा सकता है। श्रम जनित होने के कारण इसमें विभिन्न स्तर पर रोजगार का सृजन भी होता है और सबसे बड़ी बात यह है कि यह उद्योग पर्यावरण के लिए मित्रवत है। अगर भारत के सन्दर्भ में देखें तो रेशम भारत में रचा बसा है। हजारों वर्षों से यह भारतीय संस्कृति और परंपरा का अंग बन चुका है। कोई भी अनुष्ठान किसी न किसी रूप में रेशम के उपयोग के बिना पूरा नहीं माना जाता। रेशम उत्पादन में भारत विश्व में चीन के बाद दूसरे नंबर पर आता है। रेशम के जितने भी प्रकार हैं, उन सभी का उत्पादन किसी न किसी भारतीय क्षेत्र में अवश्य होता है। भारतीय बाजार में इसकी खपत काफी ज्यादा है। विशेषज्ञों के अनुसार रेशम उद्योग के विस्तार को देखते हुए इसमें रोजगार की काफी संभावनाएं हैं। फैशन उद्योग के काफी करीब होने के कारण उम्मीद की जा सकती है कि इसकी मांग में कमी नहीं आएगी। पिछले कुछ दशकों में भारत का रेशम उद्योग बढ़ कर जापान और पूर्व सोवियत संघ के देशों से भी ज्यादा हो गया है, जो कभी प्रमुख रेशम उत्पादक देश हुआ करते थे। भारत रेशम का बड़ा उपभोक्ता देश होने के साथ-साथ पांच किस्म के रेशम- मलबरी, टसर, ओक टसर, एरि और मूंगा सिल्क का उत्पादन करने वाला अकेला देश है। मूंगा रेशम के उत्पादन में भारत का एकाधिकार है। यह कृषि क्षेत्र की एकमात्र नकदी फसल है, जो 30 दिन के भीतर प्रतिफल प्रदान करती है। रेशम की इन किस्मों का उत्पादन मध्य और पूर्वोत्तर भारत के जनजातीय लोग करते हैं और यहां चीन से भी ज्यादा मलबरी कच्चा सिल्क और रेशमी वस्त्र बनता है। रेशम का मूल्य बहुत अधिक होता है और इसके उत्पादन की मात्रा बहुत ही कम होती है। विश्व के कुल कपड़ा उत्पादन का यह केवल 0.2 फीसदी ही है। रेशम आर्थिक महत्त्व का मूल्यवर्द्धित उत्पाद प्रदान करता है।



मूंगा रेशम पतंगा

एक वक्त था जब पश्चिमी अफ़ग़ानिस्तान का हेरात प्रान्त उस वक्त के सिल्क रूट के ठीक मध्य में पड़ता था। यहाँ लंबे अर्से से रेशम बनाने का काम होता था और यहाँ के बुनकर क़ालीन और रेशमी कपड़े तैयार करते थे। हज़ारों परिवार इससे अपनी रोज़ी-रोटी चलाते थे लेकिन दशकों तक चली लड़ाई और अस्थिरता ने अफ़ग़ानिस्तान को बहुत नुकसान पहुँचाया। कभी यहाँ का रेशमी कारोबार खूब फला-फूला जिस पर अफ़ग़ानिस्तान इस पर गर्व कर सकता था लेकिन अब यहाँ के बुनकर परिवारों को विदेशों से मँगाए जाने वाले सस्ते रेशम की चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। अफ़ग़ानिस्तान और रूस के संघर्ष के दिनों ने इस इलाके से रेशम के कारोबार को लगभग ख़त्म ही कर दिया था। तालिबान के दौर में तो हालात और भी बिगड़ गए। हालांकि अब बदलाव की उम्मीद जगी है। देश के कृषि विभाग ने हेरात प्रान्त के परिवारों को इस इलाके में रेशम का उत्पादन फिर से शुरू करने के लिए मदद की पेशकश की है। यहाँ के कई ज़िलों में रेशम के कीड़ों को पालने वाले 5, 050 बक्से बाँटे गए हैं। लगभग 42, 500 महिलाएँ और उनके परिवारों को इस परियोजना से जोड़ा गया है। इस परियोजना का उद्देश्य उन्हें रोज़ी-रोटी का साधन देना और देश के रेशम उत्पादकों को अंतरराष्ट्रीय बाज़ार से जोड़ने का मौक़ा देना है। हेरात प्रान्त रेशम उत्पादन के लिहाज़ से एक आदर्श जगह है। यहाँ शहतूत के पेड़ खूब मिलते हैं जो कि सूखे मौसम में रेशम के कीड़ों को भोजन उपलब्ध कराते हैं। ऊन और रेशम से बने पारंपरिक अफ़ग़ानी कालीनों की कीमत हज़ारों पौंड में हो सकती है। अफ़ग़ानी क़ालीन दुनिया भर में मशहूर रहे हैं। इस काम में ज़्यादातर औरतें और बच्चे लगा करते थे। एक वक्त था जब देश की आबादी का पाँचवाँ हिस्सा रेशम के कारोबार से किसी न किसी रूप में जुड़ कर अपनी रोज़ी रोटी चलाता था लेकिन अब ये संख्या पहले जैसी नहीं रही। प्राकृतिक रेशम की कीमत बढ़कर दोगुनी हो गई और हेरात के लोग सस्ते सिंथेटिक

रेशम की चुनौती से निपटने की कोशिश में लगे हुए हैं ।

उत्पादन की प्रक्रिया के परिपेक्ष्य में रेशम दो प्रकार का होता है - शहतूती रेशम (Mulberry Silk) और गैर-शहतूती रेशम (Non-Mulberry Silk) । शहतूती रेशम (Mulberry Silk) - शहतूत (मलबरी) पौधों की पत्ती खाकर रेशम-कृमि (कीड़ा) जो रेशम बनाता है, उसे शहतूती रेशम कहा जाता है । शहतूत की पत्तियां प्राप्त करने के लिए शहतूत के पौधों की खेती की जाती है । इस विधि में कृमि (कीड़ा) पालन घर के अन्दर किया जाता है । गैरशहतूतीरेशम - इसके अंतर्गत टसर (कोसा) तथा मूंगा और एरी (अरंडी) रेशम आते हैं । टसर (कोसा) रेशम -इस कृमि के खाद्य वृक्ष साल, अर्जुन इत्यादि है । इन वृक्षों की पत्तियां खाकर रेशम कृमि जो रेशम बनाता है, वह तसर या कोसा रेशम कहलाता है .इस विधि में कृमि पालन खुले आकाश में किया जाता है । ओक तसर रेशम -यह बाज आदि पौधों की पत्तियों पर आधारित है । मूंगा रेशम - इस रेशम के कृमि के खाद्य वृक्ष सोम तथा सोलू है जो मुख्यतः आसाम में पाए जाते हैं । एरी या अरंडी रेशम - इस रेशम के कृमि का कृमि पालन अरंडी के पौधों पर किया जाता है ।



तसर रेशम के कृमि चार अवस्थाओं से गुजर कर जीवन चक्र पूरा करते हैं । अंडा, इल्ली या लार्वा, संखी या प्यूपा और शलभ या मंथ । तसर कृमि के अंडे के अन्दर उसके भ्रूण का विकास होता है जिससे छोटी-छोटी इल्ली या लार्वा बाहर निकलते हैं जो तसर कृमि के भोज्य पौधों यथा आसन, अर्जुन, साल आदि की पत्तियां खाकर वृद्धि करते हैं । लार्वा परिपक्व होकर अपने मुंह से एक विशेष प्रकार की लार निकालते हैं, जो हवा के सम्पर्क में आकर रेशम धागा बन जाता है । लार्वा अपने चारों तरफ एक कवच या कोसा (cacoon) बनाकर उसके अन्दर प्यूपा में रूपांतरित हो जाता है । कोसा के अन्दर प्यूपा निष्क्रिय-सा दिखता है । लेकिन इसके अन्दर अनेकों जैविक क्रियाएं चलती रहती हैं । जिसमें उसके अंगों का विघटन, तथा

प्रजनन अंग बनाना प्रमुख होते हैं । कोसा के अन्दर ही प्यूपा माथ में परिवर्तित होता है जो बाद में कोसा को भेद कर बाहर निकलती है । माथ की उपयोगिता मात्र प्रजनन के लिए होती है । नर तथा मादा मेटिंग करते हैं तथा इसके बाद मादा अंडे देती है । इस तरह इनका जीवन चक्र चलता है । तसर कृमि की मादा माथ एक बार में 150 से 250 तक अंडे देती है । निषेचित अण्डों में से अंडा देने के 9 से 10 दिन बाद मौसम के अनुरूप नवजात लार्वा निकलते हैं । अंडे से बाहर निकलते ही लारवा खाद्य पौधों की पत्तियां खाना प्रारंभ करके शरीर की वृद्धि करते हैं । इस वृद्धि के समय लार्वा 5 अवस्थाओं से गुजरता है । लार्वा पांचवीं अवस्था में परिपक्व होने पर अपने मुंह से लार निकालते हुए कोसा बनाते हैं, जो हवा के सम्पर्क में आकर कठोर हो जाता है । लार्वा पत्ती को किनारे से खाना शुरू करते हैं । लार्वा अपनी पांचवीं अवस्था के अंतिम समय में पत्ती खाना बंद कर देता है । वह अपनी आंत से भोजन के सभी अपशिष्टों को शरीर से बाहर निकालता है तथा अपने मुंह से लार निकलते हुए कोसा बनाता है, जो हवा के सम्पर्क में आकर कठोर हो जाता है । तसर कृमि का एक लार्वा अपने जीवनकाल में कोसा बनाने तक लगभग 300 ग्राम पत्तियां खाता है ।

संखिया प्यूपा, तसर कृमि के लार्वा द्वारा निर्मित कोसा कवच (cocoon) के अन्दर स्थित होता है । प्यूपा तसर कृमि की एक महत्वपूर्ण लेकिन निष्क्रिय अवस्था है जिसकी चयापचय (metabolism) की गति अत्यंत धीमी होती है । इस अवस्था में ही भोजन अंग एवं प्रजनन अंग बनते हैं । तसर कोसा या ककून का रंग भूरा-पीला होता है । तसर लार्वा परिपक्व होकर जब कोसा बनाने के लिए तैयार होता है, तब वह 3-4 पत्तियों के समूह का हेमक (Hammock) बनाने के लिए चयन करता है । हेमक बनाने के लिए वह पत्तियों को जोड़ता है तथा अनियमित रूप से रेशम धागा छोड़ता है । लार्वा लगभग 6 घंटा हेमक बनाने में लगाता है । कोसा के अन्दर प्यूपा, माथ में रूपांतरित हो जाता है । प्यूपा एक विशेष प्रकार का एंजाइम निकालता है जिससे कोसे के अन्दर की सतह गीली हो जाती है तथा कोसे के धागे ढीले हो जाते हैं । इसमें माथ को कोसे से बाहर निकलने में आसानी होती है । तसर कोसे का उपयोग दो प्रकार से किया जाता है-प्रजनन हेतु अर्थात् डोडा निर्माण के लिए तथा दूसरे, रेशम धागा बनाने के लिए । माथ, तसर कृमि की वयस्क अवस्था होती है । इसके मुखांग विकसित नहीं होते । अतः यह भोजन नहीं करता है । इसका कार्य मात्र प्रजनन करना तथा अंडा देना होता

है। यह मात्र 7 से 10 दिनों तक ही जीवित रहता है। तसर कोसा से माथ मुख्यतः रात/सुबह में निकलती है तथा कोसा के बाहर आते ही मेटिंग (mating) शुरू हो जाता है। वृक्षों से कोसे की कटाई उसके कोसा बनाने के 6-7 दिन बाद, जब कोसे के अन्दर शंखी बन जाती है, किया जाता है। कोसे को उसके छल्ले के समीप से काटकर टहनियों से अलग किया जाता है। कोसा कटाई के बाद बीज (Grainage) हेतु अच्छा कोसा छांटकर अलग किया जाता है और शेष को धागाकरण के लिए इकट्ठा किया जाता है। रेशम निकलने का प्रतिशत 40-45% अर्थात् 0.20 ग्राम प्रति कोसा के करीब है। तसर कृमि एक बहुभक्षी कृमि है अर्थात् वह अनेक प्रकार के पौधों की पत्तियां खाकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। जैसे आसन या साज (Tomentosa) तथा अर्जुन (Arjuna) की पत्तियां खाकर गुणवत्तायुक्त कोसा बनता है। इसके अलावा वह साल (Shorea Robusta), सिध्दा, जामुन, बेर इत्यादि अनेक पौधों की पत्तियां भी खाता है लेकिन इस पर उत्पादित कोसे की गुणवत्ता कम होती है।

रेशम का इतिहास बहुत पुराना है। इसकी शुरुआत ईसा पूर्व 5 वीं शताब्दी में चीन से हुई। चीन ने इस उद्योग करीब 200 वर्षों तक छुपा कर रखा। धीरे-धीरे यह उद्योग कोरिया, जापान, भारत, पाकिस्तान और अरब देशों तक फैला। भारत में सिंधु घाटी की सभ्यता में खदाई से ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में चीन से व्यापार के प्रमाण मिले हैं। भारत में रेशम का चलन व्यवहारिक प्रचलन ईसा पश्चात 5 वीं सदी में शुरू हुआ। मुगलकाल में भी भारत में इसका प्रचलन बढ़ा। आधुनिक भारत में वाराणसी, कोलकाता, गुवाहाटी, कांचीपुरम्, सुरत और अहमदाबाद रेशम के कपड़े के व्यापार के मुख्य केन्द्र हैं। इस समय रेशम की साड़ी और कर्ते के कपड़े आदि का व्यवहारिक उत्पादन के केन्द्र वाराणसी और कांचीपुरम् हैं। हैंडलूम से बननेवाली 1 साड़ी में 2 माह लग जाते हैं। भारतीय कलाकार वाराणसी में कताई, बनाई, रंगाई के साथ-साथ कपड़ों में सूरज, चांद, सितारे, नदियां, पेड़, फूल, पक्षी, बैल, घोड़े, शेर, हाथी, मोर, हंस, बाज आदि का रूपांकन करते हैं। रेशम की साड़ी में सोने, चांदी और जरी के धागे इस्तेमाल किये जाते हैं।

भारत में रेशम के धागे बनाने का काम 19 शताब्दी में शुरू हुआ। भारत में केरल, तमिलनाडु, असम, पश्चिम बंगाल और मध्यप्रदेश में रेशम के धागे और कोया का उत्पादन होता है। मध्यप्रदेश के विदिशा, होशंगाबाद, हरदा, ब्रह्मानपुर में बड़े पैमाने पर रेशम के कोये का उत्पादन शुरू हो गया है। विदिशा में शहतूत से

कोया, कोये से धागा और धागे से रेशम के कपड़े बनाने का काम व्यवहारिक रूप से पिछले 5 दशक से हो रहा है। विदिशा के सिरोंज में रेशम के धागे से कपड़े बनाने का कारखाना है। लाखों रेशा मिलकर रेशम बनता है।

रेशम को बनाते हैं रेशम के कीड़े या उनकी इल्लियाँ। रेशम के कीड़े सैकड़ों किस्म के होते हैं मगर उनमें से जो कीड़ा सबसे बढ़िया क्वालिटी का रेशम तैयार करता है, उसका वैज्ञानिक नाम है, *बॉम्बिक्स मोरी*। रेशमी कपड़े तैयार करने के लिए रेशम के कई कीड़ों की जरूरत पड़ती है। इसलिए रेशम के कीड़ों को पालना शुरू किया गया ताकि बड़े पैमाने पर रेशम का उत्पादन किया जा सके। जापान में लगभग 2,000 ऐसे परिवार हैं जो आज भी बड़ी मेहनत से रेशम के कीड़ों को पालते हैं। और गुनमा नाम के प्रांत में शोई चीकावाहाराडा का परिवार उनमें से एक है। उसका दो-मंजिला घर खास इसी उद्देश्य से बनाया गया है। यह घर एक पहाड़ के पास बसा है जहाँ से शहतूत का बाग नज़र आता है।



मादा कीड़ा, 500 के लगभग अंडे देती है। अंडा, आलपीन की नोक के बराबर होता है। करीब 20 दिन बाद, अंडों से लार्वा निकल आते हैं। ये लार्वा, भुक्खड़ होते हैं। वे रात-दिन सिर्फ शहतूत की पत्तियाँ खाते हैं और रुकने का नाम नहीं लेते। सिर्फ 18 दिनों के अंदर, ये कीड़े अपने पहले आकार से 70 गुना बढ़ जाते हैं और उतने समय में वे चार बार अपनी पुरानी खाल को उतार चुके होते हैं।

इन कीड़ों के खाने की आवाज़ बिल्कुल मूसलाधार बारिश के वक्त पत्तियों पर गिरने वाली बूंदों की आवाज़ जैसी होती है। रेशम का एक कीड़ा जब पूरी तरह बढ़ जाता है, तब उसका वज़न अपने शुरुआती वज़न से 10,000 गुना ज़्यादा होता है। अब वह गोले के आकार का घर (कोया) बनाने के लिए तैयार होता है।

जब कीड़े पूरी तरह बढ़ जाते हैं, तब उनका शरीर पारदर्शी बन जाता है। इससे पता चलता है कि वे कोया बनाने के लिए तैयार हैं। जब ये कीड़े बेचैन-से हो जाते हैं और कोया बनाने के लिए जगह की तलाश करने लगते हैं, तब उन्हें कई खानों से बने बक्स में रख दिया जाता है, जो दोनों तरफ से खूला होता है। इसी में वे अपने ही शरीर पर सफेद रंग का बढ़िया किस्म का रेशमी धागा तैयार करते हैं।

इस बीच, रेशम के कीड़ों के अंदर एक अद्भुत बदलाव हो रहा होता है। शहतूत की पत्तियाँ पचने के बाद फाइब्रॉइन में बदल जाती हैं। यह एक तरह का तरल रेशम प्रोटीन है जो इल्ली की दो ग्रंथियों में जमा हो जाता है और ये ग्रंथियाँ इल्ली जितनी लंबी होती हैं। जैसे-जैसे इन दोनों ग्रंथियों में से फाइब्रॉइन के महीन रेशे निकलने की कोशिश करते हैं, वैसे-वैसे सेरिसिन गोंद इन दोनों रेशों को एक साथ बाँध देता है। और जब यह तरल रेशम, कीड़े के मुँह से निकलकर हवा के संपर्क में आता है, तो यह कड़ा होकर रेशम का एक धागा बन जाता है।

एक बार जब कीड़ा, रेशम बनाना शुरू कर देता है, तो फिर वह थमने का नाम नहीं लेता। वह एक मिनट में 30 से 40 सेंटीमीटर रेशम का धागा बुनता है। और बुनाई के शुरू से लेकर आखिर तक वह सिर हिलाता रहता है। एक अनुमान के अनुसार जब तक एक कीड़ा अपना कोया बनाना खत्म करता है, तब तक वह अपना सिर करीब 1, 50, 000 बार हिला चुका होता है। दो दिन लगातार बुनाई करने के बाद, यह कीड़ा 1, 500 मीटर लंबा धागा तैयार कर चुका होता है। यानी एक गगनचुंबी इमारत से भी चार गुना लंबा धागा।

कोयों में लिपटे रेशम को खोलकर चरखी में डालने की प्रक्रिया को अटेरना कहते हैं। इसकी शुरुआत कैसे हुई इस बारे में कई कथा-कहानियाँ हैं। एक यह कि एक दफा चीन की रानी शी लिंग शी ने देखा कि शहतूत के पेड़ से एक कोया सीधे उसकी चाय की प्याली में जा गिरा है। उसे निकालने की कोशिश करते वक्त उसने गौर किया कि कोए के साथ एक रेशम का धागा लगा हुआ है। और तब से शुरू हुई अटेरने की प्रक्रिया। आज रेशम को मशीनों की मदद से अटेरा जाता है।

कोयों को बेचने के लिए, उसके अंदर के प्यूपा को मार दिया जाना चाहिए, नहीं तो वे बाहर निकलते समय कोए को नष्ट कर सकते हैं। इस काम को पूरा करने के लिए गरम पानी या भाप का इस्तेमाल किया जाता है। खराब कोयों को अलग किया जाता है और जो बच जाते हैं उन्हें सबसे पहले गरम पानी में डाल दिया जाता है या भाप से सेंका जाता है ताकि सेरिसिन गोंद मुलायम हो जाए और धागे खूल जाएँ। फिर मशीन में लगे घूमने वाले ब्रशों के द्वारा पतले धागे की छोर का पता लगाया जाता है। धागे को कितना मोटा होना चाहिए उस हिसाब से दो या उससे ज्यादा कोयों को एक सूत बनाने के लिए अटेरा जाता है। फिर जैसे-जैसे सूत को चरखी पर अटेरा जाता है, वैसे-वैसे वह सूखता जाता है। इसके बाद, कच्चे रेशम को जितना लंबा और भारी होना चाहिए, उस हिसाब से उसे एक बार फिर बड़ी चरखी पर लच्छों में अटेरा जाता है। रेशम इस्पात के समान मजबूत होता है। रेशम में वो दमक है, जो एक खूबसूरत मोती में होती है। उसमें यह दमक, दरअसल कई परतों से बने फाइब्रॉइन के कारण आती है, जो रोशनी को कई दिशाओं में फैलाता है। रेशम में जो ऐमीनो अम्ल पाए जाते हैं, वे त्वचा के लिए मुलायम पदार्थ हैं। कहा जाता है कि रेशम, त्वचा को अलग-अलग तरह के त्वचा-रोगों से बचाता है। सौन्दर्य प्रसाधन की कुछ चीजें, रेशम के पाउडर से बनती हैं। रेशम के रेशों में ऐमीनो-अम्ल और कई छोटी-छोटी खाली जगह होती हैं जो शरीर से निकलने वाले पसीने को सोख लेती हैं और उसे सूखा देती हैं। इससे गर्मियों के मौसम में चिपचिपाहट नहीं बल्कि आराम महसूस होता है। रेशम आसानी से जलता नहीं और अगर जल भी जाए तो भी इससे ज़हरीला गैस नहीं निकलता। रेशम, सूरज की खतरनाक किरणों को सोख लेता है और इस तरह त्वचा की सुरक्षा करता है। रेशम में धनात्मक और ऋणात्मक दोनों आयन होते हैं साथ ही यह नमी को सोख लेता है। इसलिए दूसरे कपड़ों की तरह रेशम, स्थैतिक विद्युत पैदा नहीं करता, यानी हमारे शरीर से चिपकता नहीं है।

Goods and services provided by plantation forestry and their quantification

Milkuri Chiranjeeva Reddy and Mhaiskar Priya Rajendra

College of Forestry, Dr Y S Parmar University of Horticulture and Forestry, Nauni, Solan, India

FAO defines plantation forests as forest or other wooded land of introduced species and in some cases native species, established through planting or seeding (1). Plantation forest ecosystem provides goods & services similar to natural forest ecosystems, although the quantity and quality varies. These goods and services represent the benefits mankind reaps, indirectly or directly, from forest plantations thus functions and services provided by these plantations apply to all benefits including goods (2).

The services provided by forest plantations can be categorized as production functions (providing food, feed fuel and other raw materials etc.), regulation functions (air and water quality maintenance, soil health enhancement & climate regulation etc.), information functions (artistic inspiration source, aesthetic & recreational value etc.) and habitat functions (supporting services). Quantification and valuation goods and services provided by forest plantation can be done by using some indicators for instance amount of pollutants extracted by an plantation ecosystem can be used as an indicator for quantifying regulation services of plantations. Once the capacity of these plantation ecosystems to provide goods and services is known, their value can be quantified.

Value of these plantation ecosystem services are primarily three types: ecological (naturalness, diversity and uniqueness/rarity etc.), socio-cultural (therapeutic value, amenity value and existence value) and economic (use and non use value). These values of plantation forests can be evaluated based upon direct market valuation (factor income, market price or public pricing etc.),

indirect market valuation (avoided cost method, mitigation cost or travel cost method etc.) and surveys (contingent valuation method or group valuation method etc.) (3).

Thus it is very important to understand the compatibility and conflicts between different land uses. Hence it is very crucial for developing a holistic landscape approach with optimal mix of services and goods. A sound understanding of the quantity and value of the goods and services (bio-physical processes and socio-economic factors etc.) is much needed for decision-making which in-turn decides the fate of planted forests. In order to develop this kind of holistic land use system it is important to involve all concerned stakeholder. Once we understand what plantation forest functions are needed, it is possible to design a plantation forest ecosystem that delivers the optimal mix of goods and services (4).

References

1. FAO (2006) *Responsible management of planted forests: voluntary guidelines*. Planted Forests and Trees Working Paper No. 37/E, Rome.
2. Fuhrer E (2000) *Forest functions, ecosystem stability and management*. Forest Ecology and Management 132: 29–38.
3. MEA (2005) *Ecosystems and Human Well-being: Synthesis*, World Resources Institute, Island Press, Washington, DC.
4. Sayer T, Chokkalinham U and Poulsen J (2004) *The restoration of forest biodiversity and ecological values*. Forest Ecology and management 201: 3–11.

Semecarpus kathalekanensis – A tree battling with extinction

Milkuri Chiranjeeva Reddy and Mhaiskar Priya Rajendra

College of Forestry, Dr Y S Parmar University of Horticulture and Forestry, Nauni, Solan, India,

Convention on Biological Diversity defines biodiversity as the variability among living organisms from all sources including, inter alia, terrestrial, marine and other aquatic ecosystems and the ecological complexes of which they are part; this includes diversity within species, between species and of ecosystems". This essence of life, which is a sensitive web of life, is being destructed at a dangerous phase by anthropogenic arrogance with a reckless approach in the name of development and modernization. We are losing many inhabitants of this earth every day before even knowing them for instance according to World Wide Fund for Nature 19 trees in Panama were extinct even before they were discovered. An estimate provided by International Union for Conservation of Nature and Natural Resources is breath taking, it says we have lost about 801 animal and plant species since 1500's, IUCN also claims that one out of 8 avian species, one out of 4 mammalian species, 1 out of four conifers, one out of 3 amphibians and six out of 7 marine turtles are threatened with extinction. Who knows these disappearing species may be a cure to deadly disease such as Ebola or AIDS or a source of nutritious food or feed or may be a spice or other income source? Or may be any thing that may support future life on earth, who knows!

Semecarpus kathalekanensis, which is recently described, highly endangered, evergreen tree species occurring in the freshwater swamp

ecosystems of central Western Ghats know as Myristica swamps, which are probably the remains of the most ancient forests of the Western Ghats with a history of more than 140 million years is one among such ill-fated species facing extinction. This critically endangered species can grow up to 20 m tall with smooth greyish-brown bark, leaves are simple obovate or oblong-lanceolate, which are 45-100 cm long and 15-22 cm wide. This species is surviving only with few individuals within five populations (Kathlekan - I, Kathlekan - II, Mundigetheggu, Thorme and Brahma Karmali) with unbalanced age structures.

This newly recognized member of plant kingdom is critically endangered because of small population sizes, dioecious breeding system, skewed sex-ratio and recalcitrant nature of the seeds when couple with habitat fragmentation and degradation as a result of anthropogenic pressure. Currently studies on ecology and population structure, reproductive biology, seed germination, tissue culture studies, genetic studies, phytochemical analyzing, standardization of nursery techniques, afforestation has been carried out. Though appreciable work has been done by various workers and institutions further holistic effort of researchers, government and local communities is needed to bring back this critically endangered species from the mouth of extinction.

Bhojpatra- Indian Paper Birch

Swaran Lata

Forest Pathology Division, Tropical Forest Research Institute, Jabalpur

Betula utilis is commonly known as Bhojpatra, Himalayan Silver Birch and Indian Paper Birch. It belongs to family Betulaceae. It is named and described by botanist David Don. The specific epithet, '*utilis*' refers to the many uses of the different parts of the tree. It is important medicinal plant that grows throughout the Himalayan region upto elevation of 4500 m. *Betula utilis* is found in China, Afghanistan, Bhutan, India and Nepal. It is the only broadleaved angiosperm tree species in the Himalayas which dominates an extensive area at subalpine altitudes. It shows high freezing tolerance, which enable them to form treeline in Himalayas. The bark of birch tree has been the subject of respect and admiration from ancient times.



***Betula utilis* Trees**

A small deciduous, moderate sized tree or shrub, 2-12 m tall, monoecious, with very distinctive bark which peels off in very thin pale almost transparent horizontal strips. Young shoots silky, soon becoming glabrous,

older glabrescent, twig dotted with yellow resinous drops.



Leaves and Male Catkins

Outer bark white, smooth with conspicuous, long horizontal lenticels, peeling off in large papery layers. Inner bark brownish or reddish white. Leaves 5-10 cm long, silky, acute, ovate or rhomboid, long fine pointed. Male catkins 5-10 cm long, drooping, reddish, collected at the tips of long shoots, appearing on base branches or with young leaves. Female catkins 2-3 cm long, solitary erect, terminating dwarf shoots. Fruits (Nuts) elliptic ovate. Its lowering and fruiting period is April-October. *Betula utilis* is pollinated by Wind.

The plant contains betulin, lupeol, olenolic acid and acetylene denolic acid in addition to leucocyanadin in the outer bark and polymeric anthocyanidins in the inner bark. The plant and its active constituents are frequently used as an anti-inflammatory, hepatoprotective, antimicrobial and anti-tumour agent.

In Ayurveda, the bark is acrid, pungent, heating, tonic, alexiteric; useful in convulsions, bronchitis, diseases of the blood and the ear, leprosy, etc. In Yunani system, the bark is good for ear-ache. The decoction of the bark is used as wash in otorrhoea and poisoned wounds. It is also antiseptic, carminative, given in eye redness, antiseptic, burns, cuts, contraceptive, ear complaints, anaemia, cough, obesity, urinogenital diseases, hysteria, toxemia and various infections. Fumes of the birch bark burnt on charcoal are passed into the vagina in order to expel the placenta. Its paste is also applied on the vaginal wall for the same purpose. Infusion of the bark also has aromatic and antiseptic properties.



***Betula utilis* Bark with Lenticels**

The ectomycorrhizal association is exist between root of *Betula utilis* and fungal mycelia. The fungal outgrowth, "Bhurjagranthi", is locally used against muscular pains and swellings. Its decoction is used as a vaginal douche to avoid conception. Internally, it is given for hidden injuries and is also a good veterinary medicine. Leaves diuretic and used in the form of infusion in gout, rheumatism, dropsy, and as a solvent of stones in the kidneys; used in skin affections, especially eczema.

The bark decoction is used as a wash in otorrhoea and poisoned wounds. The infusion of the bark is used as carminative; it is prescribed also in hysteria. In Malaya, the bark is used in the form of decoction for jaundice and bilious fevers. The bark is used as a substitute for paper by some of the hill tribes, and supposed by them to be more durable than paper. The bark peels off in large sheets, and is used for umbrellas, for writing upon, and for the flexible tubes of hookahs. The bark is used for chatta or rude umbrellas, for covering tubes of hookahs or native smoking pipes, and being of a sacred character it is burnt on the funereal pile. Wood is tough, even grained, moderately hard and elastic. The wood is used for construction of bridges, houses and fire wood.

The thin, papery bark peeling off in horizontal rolls was once used as a writing paper. Its use for literacy purpose is attested by Kalidasa, Sushruta and Varahamihira etc. It also formed the garment of the attendants of Lord Shiva. During the ancient times the white, paper-like bark of Himalayan birch is used writing

lengthy scriptures and texts in Sanskrit and other scripts in Himalayan states especially historical Kashmir. In the late 19th century



Manuscript written on the bark of *Betula utilis*
Kashmiri pandits reported that all of their books were written on Himalayan birch bark until Akbar introduced paper in the 16th century.



Fuel wood collection

Even today, bhojpatra is used for preparation of Talishman and amulets by Hindu Tantriks in which bark with the sacred mantras are placed and worn around the neck for



Old houses roofed with sheets of bhojtra
protection or blessing. Hindu pilgrims visiting the shrine of Amarnath in Kashmir divest themselves of their ordinary clothes before entering the shrine, covering their bodies with bhojpatra.

Ailanthus webworm, *Atteva fabriciella* Swederus (Lepidoptera: Yponomeutidae) - a major threat to *Ailanthus excelsa*

Dr. Sanjay Paunikar

Forest Entomology Division, Tropical Forest Research Institute, Jabalpur

Mahaneem (*Ailanthus excelsa*) is a lofty deciduous fast growing tree. It belongs to family Simaroubaceae, commonly known as *Maharukh* or *Mahaneem*, is one of the promising multipurpose tree species in India. Though, it is widely distributed in India and subcontinent from moist to semi-arid regions with annual rainfall ranging from 500- 1900 mm. It is a strong light demander and avoids waterlogged areas or clayey soils with poor drainage. The tree attains a height of 18-25 m and girth of 2.5 m and has a cylindrical bole. It coppices well and produces root suckers. The tree is lopped for fodder and the leaves are rated as highly palatable and rich in protein. The leaves are also used for preparing lotions for scabies and bark is bitter and has medicinal value. It is used in diseases like dysentery, bronchitis, asthma, dyspepsia and earache. The bark is also utilized in indigenous veterinary practices. Quassinoids and ailantic acid are isolated from bark. The wood is used for packing cases, fishing floats, sword sheath, match wood boxes and match splints, toys and pulp for paper industry. Now a day's, Ardu is widely used for social forestry programme in India.

Among the biotic factors affecting the establishment of Ardu plantations *Ailanthus* webworm *Atteva fabriciella* Swederus (Lepidoptera: Yponomeutidae) commonly

known as *Ailanthus* web worm or defoliators is most prominent one. It is common throughout southern India and also recorded in Borneo. In India the primary host plant of this pest is Ardu but it is also reported to be defoliators of *Boswellia serrata* and *santalum albumum*. A severe incidence of this webworm has been observed on ardu in forest areas during November to February every year causing 35 to 50% mortality of seedlings. Severe defoliation by the webworm on 1-2 year old plants causes death of plants and older plants get weakened. The larvae even feed on inflorescences and seeds. The oval, pale green eggs are laid by fertilized female moth singly or in small groups usually on the abaxial surfaces of the leaves. The newly hatched larvae measure 2 to 2.5 mm in length and feed voraciously on the leaves. It undergoes four moults resulting in the formation of five larval instars. The larvae when fully grown, attain the length of 20-25 mm and are greenish grey with pale longitudinal stripes and scattered short hairs arising from small whitish warts, feed gregariously in a common web spun over leaves and shoots. After completely defoliating a tree, the larva bores into the tender shoots and causes bushy trees due to the formation of excessive epicormic branches. Later the final instar larva secretes loose transparent silken boat-shaped cocoons

and undergo pupation within the common web. The pupal periods lasts for 8 to 12 days and the emerged moth is medium sized with the wing span of about 20 mm. Its forewings are yellowish brown with white patches and the hind wings are membranous. It was reported to have 9 to 10 generation in a year whereas it completes 3 to 4 generations only in arid zones of India. The insect is found in throughout in India from Madhya Pradesh, Maharashtra, Chhattisgarh, West Bengal, Rajasthan, Kerala, Gujarat, Karnataka, Uttar Pradesh and some other parts of the country.

The some integrated control measures are required to combat to insect pests of Ardu like monocultures should be avoided as it leads to population build up and results in outbreaks. Occasional pruning especially when the pest



The larvae of *Atteva fabriciella* damage yourn plant of Ardu

population is on the increase in old trees. These pruned leaves can be used as fodder for cattle. The webworm in India has several

natural enemies, of which the larval parasite *Bessa remota* and *Carcetra* sp. and pupal parasite *Brahymeria nephantials* are prominent.

The damage caused by webworm to the nursery stocks and young plantations of *Ailanthus* is too heavy to combat the situations without the application of certain control measures. Spraying of Monocrotophos 36 WSC-2 ml/ litres, Fenvalerate 20 EC- 1 ml/ litres, Chloropyriphos 20 EC -2.5 ml/litre in alone or combination with neem seed oil 5 ml/litre or Fenthion 100 EC-1 ml/litre at the interval 15 days has given effective control of pest in seedlings of ardu in forest nursery and



Adults of *Atteva fabriciella* young plantations.

वन रोपवाटिका मध्ये कुरतडणा-या प्राण्यांचा (रोडन्ट्सचा) प्रादुर्भाव व त्याचे व्यवस्थापन

डॉ. संजय पौनीकर

वन किटक विज्ञान विभाग, उष्ण कटिबंधीय वन संशोधन संस्था, जबलपुर

विविध प्रजातीचा झाडांचा रोपांना व मोठ्या वृक्षांचा सगळ्या अवस्थांना साधारणता विविध प्रकारचा हानीकारक किटकांचा प्रजाती (Insect Pests species) व दुस-या प्राण्यांचा प्रजाती जे किटक नाही आहेत (Non-Insect Pests species) फारच नुकसान करतांना आढळतात. ह्यांचा विविध प्रजाती विविध अवस्थेत असणा-या झाडांना जसे उभे वृक्ष, त्यांचे बिया, साठवुन ठेवलेले बिया, वन रोपवाटिकेत लावलेले रोप, वन रोपणात लावलेले गेलेले वृक्ष प्रजाती, नैसर्गिक वन क्षेत्रातले वृक्ष, काष्ठ भांडारातले मौल्यवान लाकडांना मोठ्या प्रमाणात नुकसान करतात, ज्यामुळे फारच मोठी आर्थिक हानी होते. जे किटक नाही आहेत (Non-Insect Pests) असे प्राणी जसे उंदीर, (Rats), खार (Squirrel), नीलगाय (Blue Bull), रांन डुक्कर (Wild Pigs), साही (Porcupines), मोलस्क (Mollusca) {स्नेल (Snails) व स्लग (Slugs)} तथा विविध प्रकारचे पक्षी (Birds) आहेत, हे प्राणी वृक्षांचा विविध अवस्थांना फार मोठी हानी पोहचवतात.

हे प्राणी हमेशा काहीनां काही वस्तूनां कुरतडत असतात, ह्यामुळे ह्या प्राण्यांना शास्त्रिय भाषेत रोडन्ट्स (Rodents) व हिंदी भाषेत कृन्तक असेही म्हणतात. ह्या वर्गाचा प्राण्यांमध्ये कुरतडण्याची वैशिष्ट्ये असते, ह्यानां समोरचे एक जोडी दात असतात त्याला इन्साईजर (Incisor) असे म्हणतात. हे दांत प्रती दिवस 0.4 मी.मी. चा दराने वाढतात ज्यामुळे हे प्राणी दांतांना झिझवण्यासाठी कोणत्याही कठोर वस्तू बरोबर आपले दांत घासावे किंवा कुरतडतावे लागतात. त्यामुळे ह्यांचे दांताची लांबी पाहिजे तेवढीच राहते, जर त्यांनी असे केले नाही तर दातांची लांबी आत मधून वाढत जाऊन ह्यांचा डोक्याला किंवा मेंदूला भेदून बाहेर निघतील असे होऊ नये म्हणुन ह्या प्राण्यांना आपले दांत झिझवण्यासाठी कोणत्याही कठोर वस्तू बरोबर घासणे किंवा कुरतडणे आवश्यक आहे. ह्यासाठी हे प्राणी कठोर वस्तू जसे लाकडाचे दरवाजे, विजेचे तार व काही घरगुती सामानांना कुरतडतात. हे बिया, रोपे, वृक्ष, उद्यान, साठवुन ठेवलेले धान्य, शेती व बागायती पीकांना ह्याच प्रमाणे विविध प्रकारचा मौल्यवान संपत्तींना फार मोठ्या प्रमाणात हानी पोहचवतात. ह्या प्राण्यांमध्ये विविध प्रकारचे जीवाणू व विषाणू असतात

त्यामुळे प्लेग, लेप्टोस्पाइरोसिस ह्या सारख्या भयंकर रोगाचा प्रसार मानवात व त्याचा पाळीव प्राण्यांवर होतो. जगात प्रामुख्याने सगळ्याच ठिकाणी हे प्राणी आढळतात. थेट अंटार्क्टिकाचा बर्फाळ प्रदेशापासुन ते कालाहारी व भारताचा थार वाळवंटा पर्यंत तसेच अमेझानचा पावसाळी वना पासुन ते उष्णप्रदेशीय पानझळी क्षेत्रा पर्यंत आढळतात. रोडन्ट्स (Rodents) हे प्राणी मूरीड (Muridae) कुटूंबाचे एक महत्वपूर्ण सदस्य आहेत. हे कुटूंब सस्तन वर्गाचा प्राण्यांत सर्वात मोठा आहे. जगात 2277 जाती-प्रजातीचे रोडन्ट्स आढळतात, ह्यामध्ये 481 जेनरा आणि 22 कुटूंब आहेत. रोडन्ट्स वर्गात इतर पण प्राणी येतात ते याप्रमाणे आहेत, उंदीर, खार, साही, वोल, हेमस्टर आणि जरबिल सारखे प्राणी या वर्गात येतात. आपल्या देशात ह्या वर्गाचे 85 पेक्षा जास्त जाती-प्रजाती आढळतात. ज्याप्रकारे भारतात कृषी हवामानाची विविधता आहे त्याप्रकारे रोडन्ट्सचा पण जाती-प्रजातीत विविधता आहे. उत्तर भारताचा हिमालया पासुन ते दक्षिण भारताचा कन्याकुमारी पर्यंत तसेच पश्चिम भारताचा वाळवंटा पासुन ते थेट उत्तर-पूर्वे भारताचा अरुणाचल प्रदेश-मेघालया पर्यंत विविध प्रजाती आढळते. एका शास्त्रोक्त सर्वेक्षणानुसार भारतात कुरतडणा-या प्राण्यांची (रोडन्ट्सची) एकूण 16 प्रजाती आर्थिक महत्वाची आहे. ह्यामध्ये प्रमुख आहेत, पारकूपाइन (हायस्ट्रिक इंडिका), पांच पट्टेवाली खार (फर्नाम्बूलस पेन्नाटी), घरगुती उंदीर (रैट्स रैट्स व मस मस्कूलस), लहान शोपटी वाला उंदीर (निसोकिया इंडिका), लहान घूस (बेंडीकोटा बेंगालेंसिस), मोठी घूस (बेंडीकोटा इंडिका), भारतीय जरबिल (टटेरा इंडिका), कच्छ रॉक रैट्स (रैट्स कच्छिकस), कोमल धार असणारा मैदानी उंदीर (रैट्स मेल्टोडा), पर्वतीय क्षेत्रात राहणारा उंदीर (रैट्स रैट्स ब्रूनस कुलस), नार्वे रेट (रैट्स नार्वेनिकस) इत्यादि आहेत. ह्या प्राण्यांत कोणत्याही कठिण परिस्थितीत यशस्वी राहण्याची व प्रजनन करण्याची उत्कृष्ट क्षमता असल्यामुळे ह्या प्राण्यांची जगात इतर प्राण्यांपेक्षा संख्या मोठ्या प्रमाणात आढळते. हे प्राणी फारच आर्थिक महत्वाचे आहेत, ह्यापैकी काही वनांचे व शेती पीकांना नुकसान करणारे फार गंभीर अकिट (Non-insect pests) आहेत.

मध्य भारताचा व तसेच पश्चिम भारताचा विविध वन रोपवाटिकांचा निरीक्षण केले असता असे

आढळून आले की, कुरतडणा-या प्राण्यांची काही प्रजाती जसे उंदीर, खार आणि साही विविध प्रकारचा वृक्ष प्रजातीचा बियांना, रोपांना, व झाडांना फार मोठ्या प्रमाणात नुकसान आढळतात. खार (Five Striped-Squirrel) वन रोपवाटिकांचा नुकसान करणारा रोडन्ट्स वर्गातला एक महत्त्वाचा प्राणी आहे. हा प्राणी वन रोपवाटिकांमध्ये पेरले गेलेले विविध प्रजातीचा बिया व रोपांना सगळ्यात जास्त नुकसान करते. खार विविध प्रजातीचा झाडांचा बियांना जसे शिशू, अरडू, कडूनींब, खेजरी, सागवन, शिवगी, करंज सिरस, निलगिरी, बांबू, गुलमोहर आणि काही औषधी झाडांना जसे शतावरी, कैर, जाळ, काळमेद्य, कोरफड, गुडवेल, टवाखीरा, कळलावी व सर्पगंधाचा बियां व लहान रोपांना खाऊन किंवा इकडे तिकडे पसरवून टाकतात. त्यामुळे बियांचा अंकुरण होत नाही व वारंवार बिया पेशावे लागतात व खर्च वाढत जातो. खार आपल्या समोरचा मजबूत दांतांनी रोपांचा मुळांना खालून कापून टाकते त्यामुळे रोप सुकून गळून शेवटी मरतात. ह्यामुळे वृक्षारोपण करण्यासाठी वेळेवर रोप तयार होत नाही व मोठी वित्तहानी सहन करावी लागते.



खार (Five Striped Squirrel) वन रोपवाटिका मध्ये बियांना खाताना.

मध्यभारताचा मध्यप्रदेश व महाराष्ट्र राज्याचा वन विभाग (Forest Departments) व वन विकास महामंडळाचा (Forest Development Corporation) वन रोपवाटिकांमध्ये सागवनाचे मोठ्या प्रमाणात पीक घेतल्या जाते. ह्या पीकांमध्ये उंदराचा काही जातीचा प्रादुर्भाव आढळला होता. उंदरांनी सागवनांचा बेडा मध्ये लावले गेलेले सागवनांच्या रोपांचा मुळांना खालून खाऊन कमजोर करतात. आपल्या समोरचा मजबूत दांतांनी मुळांना खालून कापून टाकते त्यामुळे रोप सुकून गळून शेवटी मरतात. उंदीर बेडांचा रोपांना तसेच बेडामध्ये किंवा बेडाचा आजू बाजूला मोठे मोठे छिद्र करतात त्यामुळे बेडाचे व रोपांचे फारच मोठ्या प्रमाणात नुकसान होते. ह्या मुळे वन रोपवाटिकेला फार मोठी वित्तहानी

सहन करावी लागते व साग्याचे जडीचे उत्पन्न फारच कमी होत असल्यामुळे वन रोपणांसाठी ठेवले गेलेले ध्येय (टार्गेट) पूर्ण होत नाही.

वन रोपवाटिकाचा पेरलेल्या बियांना व रोपांना खार व उंदरांपासून वाचविणे अत्यंत आवश्यक आहे. ह्यासाठी 1 x 1 मीटर लांबीची लोखंडाची बारीक विणलेली जाळी पेरलेल्या बियां व लहान रोपांवर ठेवले असता खार किंवा उंदीर आत मध्ये जाऊ शकत नाही. हा एक प्रभावी उपाय आहे.

काही रासायनिक उंदीरनाशका (Rodenticides) द्वारे सुद्धा ह्या उपद्रवी रोडन्ट्सला आटोक्यात आणले जाते. वन रोपवाटिकांमध्ये किंवा प्रायोगिक क्षेत्रात उंदरांनी पाडलेले मोठे मोठे छिद्र फावड्यांनी चांगल्या त-हेने बुझवून टाकावे. दुस-या दिवशी उंदरांनी नवीन उघडलेल्या छिद्रात गहू किंवा ज्वारी व शेंगदाण्याचा तेल मिसळून छिद्रात दोन तीन दिवस सतत टाकावे. नंतर या मिश्रणात उंदीर मारण्याचे औषध झिंक फास्फाईड (Zinc Phosphide) मिसळून उंदरांनी पाडलेल्या छिद्रात टाकावे. दोन तीन दिवसांनी उंदीर बाहेर किंवा आत मध्ये मरून पडलेले दिसतात. या औषधामुळे 60 ते 70 टक्के उंदरांचा नाश होतो. उरलेल्या उंदरांना काही नवीन पीढीचे उंदीरनाशक (New Generation Rodenticides) जसे वारफॅरिन (Warfarine), ब्रोडिफेकॉम (Brodifacoum), ब्रोमॉडाइलान (Bromadiolone) आणि डाइफेथिलॉन (Difethialone) हे रक्त गोठण्याची क्रिया थांबवणारे कितकनाशक (Anticoagulant) सारख्या औषधीचा उपयोग करून त्यांची संख्या आटोक्यात आणता येते.



खार (Five Striped Squirrel) वन रोपवाटिका मध्ये रोपांना खाताना.

अश्याप्रकाराने उपद्रवी रोडन्ट्सचा व्यवस्थापन केल्यास वन रोपवाटिकांमध्ये पेरलेल्या बिया, लहान रोपे आणि वन रोपणांचे वृक्ष प्रजातींना वाचवू शकतो.

पौधे प्रकृति व मानव सभ्यता के महान संरक्षक

डॉ सीमा भास्कर

वनस्पति शास्त्र विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सिवनी (म प्र)

पौधों के संरक्षण के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि लोग वनों की उपयोगिता समझें। जब हम वन का नाम लेते हैं तब हमारी आँखों के सामने तरह-तरह के हरे-भरे चित्र उभरने लगते हैं। इनमें झाड़ियाँ, घास, लताएँ, वृक्ष आदि विशेष रूप से शामिल होते हैं। वे एक दुसरे के सहारे जीते हैं। और फैलते-फूलते हैं।

मात्र यह सोचना कि वन केवल लकड़ी की खाने हैं, गलत है। वन केवल लकड़ी की खानें नहीं हैं, हानिकारक गैस 'कार्बन डाइ ऑक्साइड' की बढ़ती हुई मात्रा को कम करने में वन बड़े सहायक होते हैं। वन प्राणरक्षक वायु 'ऑक्सीजन' की आवश्यकता को पुरा करते हैं, इसलिये वनों का संरक्षण जरूरी है। सच तो यह है कि कल तक जहाँ वन थे, आज वहाँ कुछ भी नहीं है।

वनों को जंगल की आग, जानवरों एवं लकड़ी के तस्करो से बचाना होगा। इससे वनों की कई किस्में अपने आप उग आएंगी। वनों का विस्तार करने में पक्षियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पक्षियों को अपनी ओर खींचने वाले पेड़ों के आस पास उनके द्वारा लाये हुये बीजों के कारण कई प्रकार के पेड़ पौधे उग आते हैं।

यद्यपि पेड़ों को पानी की जरूरत कम से कम होती है, तथापि नये लगाये गये पौधों के लिये कुछ समय तक जल की व्यवस्था अत्यंत आवश्यक है। यह व्यवस्था पोखर, तलाब और पहाड़ी ढालों पर कतार में गड्ढे बनाकर हो सकती है। इसे वृक्षारोपण कार्यक्रम का एक जरूरी हिस्सा समझना चाहिये। वनों कि विविधता को बनाये रखने के लिये भौति भौति के पेड़ पौधे झाड़ियाँ और लताये पुनः रोपनी चाहिये।

आज जिस तरह से वनों कि कटाई की जा रही है वह चिंता का विषय है वनों से पर्यावरण स्वच्छ रहता है।

भारत को सन् 1947 में स्वतंत्रता मिली उसके बाद सन् 1952 में सरकार ने वनों की रक्षा के लिये एक नीति बनाई थी उस नीति को राष्ट्रीय वन नीति का नाम दिया गया इस नीति में व्यवस्थायै तैयार की गई देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के 33 प्रतिशत भाग पर वनों होना आवश्यक माना गया है इसके अंतर्गत पहाड़ी क्षेत्रों में 60 प्रतिशत भूमि पर।

आज स्थिति यह है कि 2263 प्रतिशत भू भाग पर ही वन है। कई राज्यों में तो वनों की स्थिति बहुत खराब है हॉ कुछ पहाड़ी क्षेत्रों में ही वनों का अच्छा खासा फैलाव है जैसे हिमाचल प्रदेश सिक्किम असम अरुणांचल प्रदेश मेघालय त्रिपुरा आदि।

वन विभाग के अनुसार वर्ष 1951 से 1972 के बीच 34 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में वन काट डाले गये इससे पता चलता है कि प्रत्येक वर्ष 15 लाख हेक्टेयर वनों की कटाई हुई वनों की कटाई के कारण जाने अनजाने कई तरह के नुकसान होते हैं वनों के सफाए से भारी मात्रा में मिट्टी का कटाव हो रहा है भारत में लगभग 15 करोड़ हेक्टेयर भूमि कटाव के कारण नष्ट हो रही है बुरी तरह से मिट्टी कटाव के कारण नदियों की तली तलाब तथा बाधों के जलाशय की हालत खराब हो रही है यही कारण है कि हर साल बाढ़ से जन धन की भारी बर्बादी होती है

पेड़ों की कटाई के कारण राजस्थान गुजरात तथा हरियाणा में रेगिस्तान का विस्तार हो रहा है पश्चिमी राजस्थान का 7.35 प्रतिशत हिस्सा रेगिस्तानी बन चुका है इन क्षेत्रों वन कटाई के कारण भूमिगत जल का स्तर बहुत नीचे चला गया है इस कारण अब न सिर्फ सिंचाई बल्कि पीने के पानी का भी संकट पैदा हो गया है

वनों की अंधाधुंध कटाई के कारण पर्वतीय क्षेत्रों में भूस्लंखन होता है और चट्टानों के खिसकने से उपजाऊ मृदा बहकर दूर चली जाती है पेड़ों की जड़ें जमीन में गहराई तक जाती है। और वर्षा के प्रवाह में मिट्टी को जकड़े रहती है जहाँ वृक्ष नहीं होते वहाँ भूमि की ऊपर वाली उपजाऊ परत वर्षा में बहकर नदी नालों में चली जाती है पेड़ पौधों के अभाव से ही समतल स्थान का पानी तेजी के साथ बहकर नदी नालों में चला जाता है जिससे भूमि पर्याप्त मात्रा में उसका अवशोषण नहीं कर पाती है।

कुँओं तालाबों बावड़ियों का पानी तभी अधिक दिनों तक टिकता है जब पेड़ों की जड़े जमीन की ऊपरी सतह को गीला रखती है पेड़ पौधों की कमी के कारण इनका जल गहराई में उतर जाता है और कुँए आदि सूख जाते हैं।

वृक्षों के पत्ते फूल डंठल टूट टूट कर जमीन पर गिरते रहते हैं और मिटटी में मिलकर सड़ जाते हैं तथा खाद बनकर भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं इस प्रकार वृक्ष अपने आस पास उगने वाले पेड़ पौधों को खाद पानी देते रहते हैं पक्षी पेड़ों पर वास करते हैं पक्षी फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़े मकोड़ों को खा जाते हैं वे अपने पंजों से फूलों के पराग इधर उधर फैला कर उनमें फल पैदा करते हैं पक्षी दूर तक उड़ते हैं और अपने डैनों पंजों द्वारा विभिन्न प्रकार के बीजों को दूर दूर तक फैला देते हैं ।

जंगली पशु पेड़ों की छाया में ही सर्दी गर्मी और बरसात की भयानक मार से राहत पाते हैं। जंगल के सभी जानवर वनों से ही अपना भोजन प्राप्त करते हैं ।

नीम का पेड़ हम घर के आस पास अवश्य लगाते हैं क्योंकि उसकी सभी पत्तियाँ जड़ तना छाल आदि उपयोगी औषध है। औषध के रूप में इनका विशेष महत्व है दाँत साफ करने के लिये नीम की दातून ही सर्वोत्तम मानी जाती है नीम का औषध के रूप में व्यापक प्रयोग होता है।

इसी प्रकार हिंदु घरों में तुलसी का अवश्य पाया जाता है तुलसी का उपयोग विभिन्न प्रकार के रोगों की चिकित्सा के लिये किया जाता है पेड़ पौधों से ही हमें हर प्रकार के फूल और स्वास्थ्य वर्धक फल मिलते हैं

सुनने में चाहे अटपटा लगे किंतु यह सत्य है कि हम भोजन के रूप में घास ही खाते हैं गेहूँ चावल जौ बाजरा मकई आदि सभी अनाज की घासें ही हैं संसार में लगभग 10 हजार किस्म कि घासें पाई जाती हैं घासों के कारण मिटटी का कटाव नहीं होता। ईख जिससे हम चीनी व गुड़ प्राप्त करते हैं भी एक प्रकार घास ही है वे सभी जानवर जिनसे हमें दूध घी मांस चमड़ा प्राप्त होते हैं मुख्य रूप से भोजन के रूप में घास का ही उपयोग किया जाता है।

पौधों को मानव जीवन व समस्त जीवों की रीढ़ माना जाता है। हम अपनी दैनिक आवश्यकताओं हेतु पौधों पर निर्भर रहते हैं।

भोजन – हम भोजन हेतु पौधों पर निर्भर रहते हैं करीब 7000 पौधों की प्रजातियाँ हैं जिनका इस्तेमाल मनुष्य भोजन के रूप में करता है। आर्कसीजन जो प्राणदायक है। ये पौधे प्रकाशसंश्लेषण की क्रिया के दौरान उसका निर्माण करते हैं जो हमें जीवन प्रदान करती है पौधे पानी के चक्र को बखूबी चलाते हैं पानी का वितरण उसके शुद्धीकरण की क्रिया में भाग लेते हैं पानी को भूमि से जड़ों की सहायता से खींचते हैं उसका उपयोग भोजन निर्माण हेतु करते हैं व पानी को

वाष्पोत्सर्जन की क्रिया के द्वारा वातावरण में पहुंचा देते हैं। पौधों का प्रमुख कार्य है

आवास आवास प्रदान करना पौधे सभी प्रकार के आवासों की रीढ़ की हड्डी है मछलियाँ वन्य प्राणी सभी भोजन व आवास के लिये पौधों पर निर्भर करते हैं। पौधे मनुष्य को दवाइयों प्रदान करते हैं अतः अपने स्वास्थ्य के लिये मनुष्य व अन्य प्राणी पौधों का उपयोग करते हैं।

पौधे वातावरण के शुद्धीकरण का कार्य करते हैं वे वातावरण की कार्बन डाइ ऑक्साइड गैस उपयोग भोजन निर्माण हेतु करते हैं व वातावरण को शुद्ध करते हैं और निर्मित भोजन अनेकों मनुष्यों को भोजन प्रदान करते हैं।

अतः हमें अपनी सभ्यता अपना जीवन बचाने हेतु पौधे का संरक्षण करना अति आवश्यक है जिससे मानव जीवन इस धरा पर अविरल गति से चलता रहे वृक्षारोपण के कार्य में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लें।

वनों का अदभुत तोहफा देकर मानवमात्र की सेवा करें।

वन संरक्षण के उपाय

कीटनाशक औषधियों का छिड़काव करना वन क्षेत्रों में कीटाणुओं तथा अवाछंतीय जीवों को नष्ट करने के लिये अनेक प्रकार कीटाणुनाशक पदार्थों का छिड़काव किया जाना चाहिये जिसके फलस्वरूप कीटाणु नष्ट हो जाते हैं तथा पेड़ पौधे स्वस्थ बने रहते हैं अतः गन्धक चूर्ण गैमकसीन एलाडिरिन आदि कीटाणुनाशक दवाओं का उपयोग करना चाहिये।

वनों की आग से सुरक्षा करना

अधिकांशतः ग्रीष्म ऋतु उष्ण तथा शीतोष्ण कटिबंधीय वनों में आपसी रगड़ से आग लग जाती है जो कि संपूर्ण वन क्षेत्रों को भस्मसात् कर देती है वनों में आग लगने से एक बड़े क्षेत्र के वनों को पूर्णतया समाप्त हो जाना एक साधारण घटना है। इसके बचाव के लिये संयुक्त राज्य अमेरिका कनाडा तथा अनेक पश्चिमी यूरोपियन देशों में वनों के मध्य स्थान पर ऊँचे ऊँचे निरीक्षण गृह बनाये जाते हैं तथा वायुयानों द्वारा आग पर निगरानी रखी जाती है जिससे समय रहते वायुयानों द्वारा रासायनिक पदार्थों का छिड़काव करके आग पर शीघ्र ही नियंत्रण कर लिया जाता है अतः वन क्षेत्रों कि आग से सुरक्षा करनी चाहिये।

वनों का स्वामित्व

निजी क्षेत्रों के वनों में संरक्षण संबंधी नियमों की खुलकर अवहेलना होती है। क्योंकि इस प्रकार के वनों

के मलिकों की दृष्टि में संरक्षण की अपेक्षा आर्थिक लाभ महत्वपूर्ण होते हैं अतः निजी क्षेत्रों के वनों का राष्ट्रीयकरण किया जाये अथवा उन पर संरक्षण नियमों को कड़ाई से लागू किया जाये ।

वृक्षों का अधिकतम उपयोग करना — औद्योगिक इकाईयों में प्रयुक्त की जाने वाली लकड़ी के उपभोग में कम से कम बर्बादी होनी चाहिये इसके साथ साथ कागज उद्योग में काम आने वाली लकड़ी के स्थान पर व्यर्थ कागज अथवा चिथड़ों का उपयोग किया जाना चाहिये वनों की विवेकपूर्ण कटाई द्वारा प्राप्त लकड़ी के अधिकतम उपयोग में इस प्रकार की वैज्ञानिक विधियों को प्रयुक्त किया जाना चाहिये जिससे वनों से प्राप्त लकड़ी की न्यूनतम बर्बादी हो। अतः वृक्षों के बहुमुखी उपयोग पर बल दिया जाना चाहिये जैसे हेललॉक नामक वृक्ष की कटाई प्रायः लकड़ी के लिये की जाती है जबकि इसकी छाल का उपयोग टेनिन के उत्पादन के लिये किया जा सकता है

वैज्ञानिक वन व्यवस्था अपनाना — वनों के संरक्षण हेतु यह एक आवश्यक तथ्य है कि वनों को वैज्ञानिक व्यवस्था के अर्न्तगत ही विकसित किया जाये । इसके अंतर्गत वनों की विभिन्न आधुनिकतम तकनीकों का वहाँ की परिस्थितियों के अनुरूप समन्वय तथा उपयोग किया जाता है यही नहीं इसके अंतर्गत वैज्ञानिक विधियों से विशेष जाति के वृक्षों का रोपण कटाई तथा सुरक्षा भी शामिल की जाती है इसके साथ साथ वनों की परिपक्व कमजोर तथा रोगग्रस्त वृक्षों की कटाई को प्राथमिकता देनी चाहिये इस प्रकार की चयनात्मक कटाई में अपरिपक्व वृक्षों की किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचानी चाहिये।

वन संरक्षण हेतु अधिनियम — वनों की सुरक्षा हेतु विश्व के सभी देशों में अधिनियम बनाकर वृक्षों को काटे जाने पर पूर्ण पावंदी लगा देनी चाहिये। यदि कोई व्यक्ति उसकी अवहेलना करता है तो उसे उचित कठोर दंड दिया जाना चाहिये।

कुछ प्रमुख अधिनियम — वन्यजीवन संरक्षण अधिनियम 1972, वनसंरक्षण अधिनियम 1980, पर्यावरण(संरक्षण)अधिनियम 1986 आदि हैं।

वनअनुसंधान शालाओं की स्थापना करना — प्रत्येक देश की सरकारों द्वारा वनक्षेत्र के अंतर्गत जगह जगह अनुसंधान शालाओं की स्थापना की जानी चाहिये जिससे वन संबंधी नये नये शोध किये जा सके इस प्रकार से वनों का तीव्र गति से विकास हो सकेगा। विश्व के अधिकांश देशों में किसी न किसी दिन वृक्षारोपण उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इसे

जपान में 'ग्रीनवीक' भारत में 'वनमहोत्सव' 'इजाराइलमें न्यू इर्यस डे ऑफ ट्री तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में 'अरबोर डे' के नाम से जाना जाता है इस प्रकार विश्व के अधिकांश देशों में वृक्षों के संरक्षण को अधिक महत्व दिया जाने लगा है।

आज धरती व प्रकृति पर छाया हुआ संकट पुरी मानवता पर छाया है और इसका समाधान यही है कि मानव जाति इस संकट के निवारण हेतु "वासुदैव कुटुम्बकम्" कि भावना के साथ सहयोग तभी धरती व उसकी संतानें सुरक्षित रह संकेगी। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था। प्रकृति हमारी हर जरूरत पूरी कर सकती है लेकिन लालच किसी एक का भी नहीं। हमें भी अब अपना स्वार्थ — लोभ नहीं बल्कि सबका हित देखना चाहिये और उसी दिशा में अपना अमूल्य सहयोग देना चाहिये।

आज वातावरण में ऐसे परिस्थिति बनती जा रही है यदि हम समय रहते न होते तो हमें बारंबार प्राकृतिक आपदाओं का प्रहार झेलना होगा प्रकृति हमारी माँ है और माँ का कार्य यदि दुलार है वो सुधार भी। यदि हम मनुष्य होने के नाते प्रकृति के संरक्षण की जिम्मेदारी स्वंय नहीं उठाते हैं तो मजबूरन प्रकृति को अपने उस रूप को धारण करना होगा जिसमें ध्वंस करे बिना नूतन सृजन संभव नहीं है। स्वाभाविक है कि इस प्रक्रिया में हमें कष्ट कठिनाइयों से भी गुजरना होगा, पर यदि हम समय रहते अपने जीवन की दिशा बदल पाने में सक्षम होते हैं तो हम संपूर्ण मानव जाति को सुंदर एवं बेहतर भविष्य निर्मित कर पाने में सक्षम होंगे। ऐसा करने के लिये आवश्यकता मात्र इतना ही है कि हम प्रकृति के साथ सहचर्य की भूमिका में वापस लौटें उसके संवेदन के इन स्वार्थी प्रयासों को यथाशीघ्र समाप्त करें।

इसके लिये नदियों को तोड़ने — मरोड़ने — बांधने के अन्यथा प्रयास न करे बल्कि इन्हें स्वच्छ करने में अपना सहयोग दे। पानी हवा और जंगलों को नियोजित करने के बजाय प्रकृतिक रहने दें। धरती में अधिक से अधिक हरियाली बढ़ायें। प्रकृति के चक्र में अवरोध या विकार पैदा न करें।

हम इस प्रकृति चाहे जितना हो पर बदले में उसी विनम्रता और मान के साथ उसे उतना लौटायें भी। यदि यह साझेदारी हम प्रकृति के इस संभावित कहर से बच पाना संभव है। यदि हम प्रकृति की सुरक्षा व संरक्षण का ध्यान रखेंगे तो प्रकृति भी हमें सुरक्षा व संरक्षण देगी। इसलिये अब यह जरूरी है कि प्रकृति व धरती माँ की सुरक्षा संरक्षण व समृद्धि की ओर हम सम्मिलित रूप से कदम बढ़ाएं।

धर्म, वनस्पति एवं पर्यावरण

डॉ. बाला खत्री एवं सीमा भास्कर*

वनस्पति शास्त्र विभाग, शासकीय स्वशासी आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर

वनस्पति शास्त्र विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सिवनी (म प्र)

मानव सभ्यता का प्रारंभ ही धर्म के साथ हुआ है। इतिहास बताता है कि धर्मों ने मानव – जीवन को सुंदर अनुशासित एवं सुव्यवस्थित किया है। अतः धर्म हमारे जीवन के हर पहलु से संबंधित है तथा मानव –जीवन के अस्तित्व से जुड़ा हुआ है अतः धर्मों का पर्यावरण से सीधा – स्वाभाविक संबंध है। भारत एक धर्मप्रधान देश है धर्म के प्रति –आस्तिकता भारतीयता का पर्याय है। प्राचीनकाल से ही भारत में वनस्पतियों का अत्याधिक महत्व रहा है भारत के ऋषि मुनियों का वनस्पतियों का ज्ञान आश्चर्यजनक रहा है। हर प्रकार की वनस्पति का वैज्ञानिक उपयोग धर्म के स्वरूप में ऋषि मुनियों द्वारा संजीवनी वृटी का पर्वत लक्ष्मणजी के उपचार हेतु लाना इसका जीवन्त उदाहरण है।

विभिन्न पूजा उत्सव में भारतीय संस्कारों में विभिन्न प्रकार के पुष्पों पत्रों एवं फलों का महत्व हमारे ऋषि मुनियों द्वारा बताया गया। कुछ प्रमुख वनस्पतियों तथा उनके वैज्ञानिक तथ्य इस प्रकार है।

1: तुलसी प्रत्येक पूजा उत्सव व संस्कारों में तुलसी का उपयोग भारत के प्रत्येक प्रान्त में किया जाता है तुलसी लगभग हर भारतवासी के आंगन में अवश्यतः पाई जाती है वैज्ञानिक आधार पर तुलसी के पौधों पर पाये जाने वाले एल्कोलाइड कर ज्वर सर्दी खांसी में दवा के रूप में उपयोग किया जाता है नवीनतम जानकारी के अनुसार तुलसी के पत्तों को दही के साथ उपयोग कर कैंसर का उपचार किया जा रहा है।

2: नीम भारतीय ऋषि मुनि प्राचीनकाल से ही विभिन्न त्वचा रोगों के लिये नीम के पत्ती फल आदि का उपयोग करते रहे है इनमें घावों को भरने

कि अदभुत क्षमता होती है नीम में पाया जाने वाला सल्फर त्वचा रोगों के लिये गुणकारी है अतः आधुनिक युग में अनेकानेक क्रीम साबुन मलहम टुथपेस्ट नीम द्वारा बनाये जाते है हमारे देश में धार्मिक मतानुसार कई भागों में नये सम्वत का स्वागत नीम की पत्ती खाकर किया जाता है नवीनतम वैज्ञानिक मान्यतानुसार नीम रक्तशोधक है वैदिककाल में हमारे ऋषिमुनि भी नीम का उपयोग संभवतः रक्तशोधक के रूप में करते थे।

3 आम– भारत में सभी धार्मिक आयोजन में आम कि पत्तियों कि वंदनवार बनाये जाते है धार्मिक मान्यता के अनुसार यह शुभ का सूचक है किंतु वैज्ञानिक मतानुसार आम कि पत्तिया में कार्बनडाइऑक्साइड (वायुप्रदुषक) को ग्रहण करने की क्षमता अन्य वृक्षों से अधिक होती है धार्मिक आयोजन में लोग अधिक संख्या में एक स्थान में एकत्रित होते है उनके श्वसन द्वारा छोड़ी गई अधिक मात्रा में कार्बनडाइऑक्साइड को अवशोषित करने के लिये ही संभवतः आम कि पत्तियों का वंदनवार बनाया जाता रहा होगा।

4 पीपल का वृक्ष चौबीस घंटे ऑक्सीजन उत्सर्जित करता है तथा बहुत अधिक मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड अवशोषित करता है यह प्रत्येक घंटे में 2252 किलोग्राम कार्बनडाइऑक्साइड सोखता है तथा 1752 किलोग्राम ऑक्सीजन उत्सर्जित करता है इसके अलावा यह जल संरक्षण का भी कार्य करता है संभवतः इसकी इसी विशेषतः के कारण मंदिरों आश्रमों तथा मुसाफिरखानों के पास पीपल के वृक्ष लगाना वैदिक कार्य रहा है।

5 आंवला नवमी के त्यौहार के रूप आंवले के वृक्ष का पूजन किया जाता है वैज्ञानिक तत्थानुसार आंवला के सेवन से विटामिन सी की पूर्ति होती है जिससे मनुष्य के शरीर में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है एक आंवले से 20 संतरे के बराबर विटामिन सी प्राप्त किया जा सकता है।

6 नारियल

धर्म केवल वनस्पति ही नहीं बल्कि पर्यावरण के संरक्षण का भी संदेश देता है।

1: ऋग्वेद (6,70,5) में कहा गया है कि ब्रह्माण्ड का एक एक कण जीव उल्का ग्रह नक्षत्र हमारे परिजन है यह सब मिलकर हमारा परिवार है और यही पर्यावरण है

2: यजुर्वेद के लोकप्रिय मंत्र में समूचे पर्यावरण को शांतिप्रिय बनाने की स्तुति की गई है इस मंत्र का अर्थ है कि जल शांति दे, औषधियों वनस्पति शांति दे ।

3: अथर्ववेद में औषधिय गुणों वाले पेड़ –पौधों व उनसे प्राप्त होने वाली औषधियों का वर्णन है इस वेद में वन को देवता स्वरूप मानकर वनदेवता की पूजा की जाती थी तथा इन वृक्षों की औषधियों की सहायता से ऋषिमुनि स्वयं को रोगमुक्त रखते थे। अनेक प्राचीन भारतीय ग्रंथों में भी को लेखकों संतों एवं विचारकों ने विभिन्न प्रकार से अपनी पर्यावरण चेतना का परिचय दिया है। भारतीय संस्कृति में वृक्षों को सदैव पूजनीय माना गया है। भगवान कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत की पूजा का प्रारंभ ,बिल्वपत्रों का भगवान शिव से संबंध इसलिये दुर्वाकुश आदि वनस्पतियों का पूजा में महत्व हमें पुराणों के

माध्यम से समझाया जाता रहा है कि हमें मिट्टी जल वृक्ष वनस्पति संरक्षित करते रहे आज विश्व के सभी वैज्ञानिक भी प्रायोगिक तौर पर सिद्ध हो चुके हैं कि नीम, पीपल, तुलसी ,बेल अशोक वृक्षों में औषधिय गुण होने के साथ –साथ उनमें पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त रखने की अदभुत क्षमता होती है। भारतीय ग्रन्थों में पर्यावरण के संतुलन को बहुत महत्व दिया गया है। इन ग्रन्थों के माध्यम से हमारे ऋषि मुनियों ने यह समझाया कि स्वच्छ पर्यावरण ही स्वस्थ व सुखी जीवन का आधार है।

सिन्धु घाटी सभ्यता में भी प्रकृति की पूजा की परम्परा विद्यमान होने के प्रमाण वैदिक ऋचाओं पुराणों, उपनिषदों आदि ग्रन्थों में सर्वत्र प्रकृति की महत्ता को स्वीकारा गया है वृक्ष और पौधे का रोपण व पेड़-वृक्षों आदि की पूजा अर्चना को धार्मिक कृत्यों से जोड़ दिया गया ताकि पेड़ पौधों को संरक्षण मानव जाति द्वारा होता रहे तथा पर्यावरण का संतुलन बना रहे परन्तु यह मानव जाति का दुर्भाग्य है कि समृद्ध वैदिक संस्कृति के होते हुए भी हम भारतीय भी अपने क्रियाकलापों द्वारा पर्यावरण को नष्ट कर रहे हैं तथा प्रदूषण फैलाकर इसके दीर्घकालिक विनाशकारी प्रभाव को नजर अन्दाज कर देव स्वरूप प्रकृति का विनाश कर रहे थे। इस प्रकार हमारी सभी सामाजिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक विचारधारायें पेड़ पौधों फल एवं फूलों पर आधारित है।

हर्बल कीटनाशक: किसान मित्र एवं उत्पादकता के साथ स्वास्थ्य का रखवाला

ए.जे.के. असैया एवं राजेन्द्र बागडे

वानिकी अनुसंधान एवं मानव संसाधन विकास केन्द्र, छिन्दवाड़ा

सब्जी की खेती करने वाले किसान साल दर साल रासायनिक कीटनाशकों की खपत बढ़ा रहे हैं। खासकर गोभी, टमाटर, मिर्ची, भिंडी, करेला और भटे की फसल में इसका उपयोग अंधाधुंध तरीके से हो रहा है। सब्जी की परत पर जमे कीटनाशक के तत्व सीधे मनुष्य के शरीर में पहुँचते हैं तो वही जमीन की उर्वरा शक्ति भी कम होती है। रासायनिक कीटनाशक के प्रयोग से मानव जाति को विभिन्न रोग हो रहे हैं जैसे कैंसर, त्वचा के रोग, मधुमेह, आँखों के रोग, गर्भाशय की विकलांगता इत्यादि। रासायनिक कीटनाशक के प्रयोग से विभिन्न प्रकार की जैवविविधता भी नष्ट हो रही है। जहाँ हानिकारक कीट मारे जाते हैं वही फायदेमंद कीट भी मारे जा रहे हैं। ऐसे हालात में हर्बल कीटनाशक बेहतर पर्याय है इससे किसानों की लागत कम होगी तो वही सब्जियों की चमक और उम्र भी बढ़ेगी। जब रासायनिक कीटनाशक नहीं थे तब भारतीय किसान हर्बल कीटनाशक का उपयोग करते थे। लेकिन रेडिमेड कीटनाशकों ने किसानों का लुभा लिया।

NATURAL PESTICIDES



निम्न परंपरागत हर्बल कीटनाशक नुस्खे से किसानों की लागत कम होगी तो वही सब्जियों की चमक और उम्र भी बढ़ेगी।

करीब 5 किलो ताजे हरे नीम के पत्ते, 5 किलो आक अथवा अकौना के पत्ते, करीब 1 किलो लहसुन और 3 किलो तीखी हरीमिर्च लेकर अच्छी तरह से कुचल लिया जाये ताकि सारा मिश्रण पेस्ट की तरह बन जाये जब पेस्ट तैयार हो जाये तो इसमें 5 लीटर गौमूत्र मिला लिया जाए और अच्छी तरह घोलकर गर्म किया जाए कम से कम तीन बार उबाल आने पर मिश्रण को ठंडा करके इसमें करीब 5-6 बाल्टी पानी (लगभग 120 लीटर) पानी मिला दे। अपनी फसल पर इसका स्प्रे करें। पूरी फसल के परिपक्व होने की अवधि में इसे तीन से चार बार इस्तेमाल किया जा सकता है। ध्यान रहे कि यह मात्रा 1 एकड़ की फसल के लिये उपयुक्त है।

इस परंपरागत नुस्खे के इस्तेमाल करने के बाद आपको किसी अन्य रासायनिक कीटनाशक की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी।



मध्य भारत के अनेक ग्रामीण अंचलों में तंबाखू, आक, नीम, सदाबहार और कनेर जैसे पौधों का उपयोग कर एक गुणकारी कीटनाशक तैयार किया जाता है। लगभग 5 किलो तंबाखू, 5 किलो नीम के पत्ते और लगभग 2 किलो अरंडी की पत्तियों को लेकर कुचल लिया जाता है। कुचलने पर पेस्ट बन जाता है जिसे 150 लीटर पानी में डालकर खूब खौलाया जाता है। जब यह आधा शेष बचे तो इसे छानकर एक बड़े पात्र में संग्रहित कर तैयार हर्बल कीटनाशक को 150 मिली हिस्सा 15 लीटर पानी में मिलाकर फसल पर स्प्रे किया जाये तो जबरदस्त असर करता है। किसान मित्र अपने खेतों के क्षेत्रफल के अनुसार इस पारंपरिक हर्बल कीटनाशक को स्वयं तैयार कर सकते हैं। मजे की बात यह भी है कि यह कीटनाशक किसी भी तरह से फसल को नुकसान होने से बचाता है और जमीन की उर्वरकता बनाये रखता है।

कई इलाकों में किसान सीताफल और अरंडी की पत्तियों को समान मात्रा में एकत्र कर कुचल लेते हैं और पेस्ट तैयार कर एक लीटर पानी में 100 ग्राम पेस्ट डालकर फसल पर इसका छिड़काव करते हैं। माना जाता है कि हरी इल्लियों के सफाये के लिये यह एक कारगर उपाय है।

सीताफल के बीजों का चूर्ण 500ग्राम लेकर इस 02 लीटर पानी में उबालें। जब पानी 500 मिली बच जाये तब इसे ठंडा कर 15 लीटर पानी में मिलाकर स्प्रे करने से विभिन्न प्रकार हानिकारक कीट इल्ली के सफाये के लिये कारगर उपाय है।

(विभिन्न स्रोतों से संकलित)

रेशम उत्पादन से जीवकोपार्जन

